भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

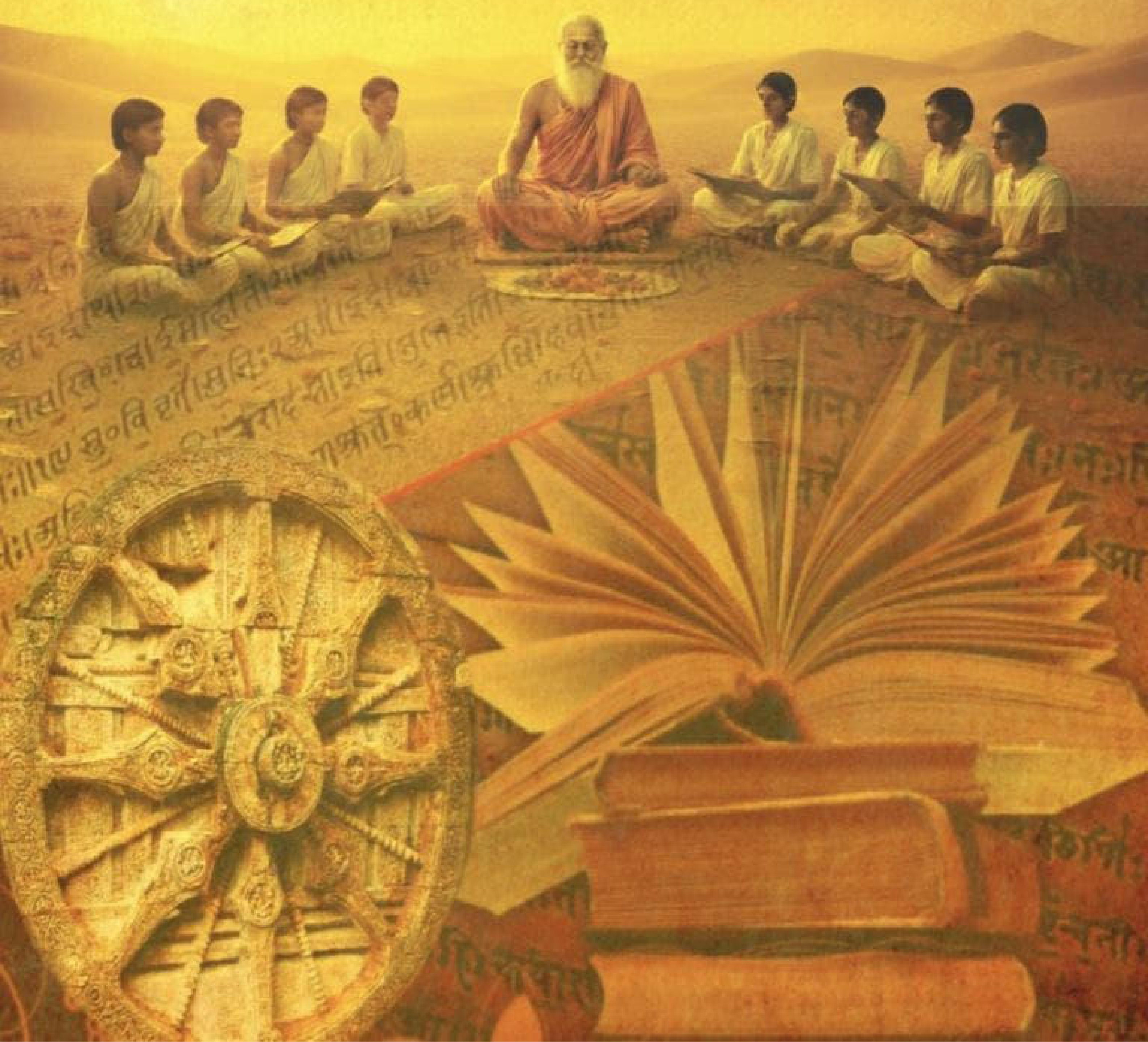

भारतीय ज्ञान प्रणाली
उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com
मो. 9660111549

संस्करण
प्रथम 2026

ISBN : 978-81-993854-1-2

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान प्रणाली-उद्गम और विकास

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

आवरण - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

15

भारतीय ज्ञान धरोहर के संदर्भ में धनुर्वेद में अस्त्र विवेचन

नरेन्द्र सिंह नाथावत
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय ज्ञान-परम्परा में धनुर्वेद केवल युद्धकला का ग्रन्थ नहीं है, अपितु वह राज्य, समाज और धर्म से संयुक्त एक सुव्यवस्थित सैन्य-दर्शन प्रस्तुत करता है। सेना के संगठन, उसके अनुशासन, पदक्रम, वेतन-व्यवस्था तथा अस्त्र-शस्त्रों की उत्पत्ति और प्रयोग—इन सभी विषयों का इसमें गम्भीर और व्यापक विवेचन मिलता है। कुरुक्षेत्र युद्ध के प्रसंग में कौरवों और पाण्डवों की अक्षौहिणी सेनाओं का जो वर्णन प्राप्त होता है, वह उस काल की सैन्य-क्षमता, संगठन-कौशल और संसाधनों की विशालता को स्पष्ट करता है। वैशम्पायन द्वारा वर्णित नीतिप्रकाशिका में अक्षौहिणी की जो संख्याएँ दी गई हैं, वे इतनी विशाल हैं कि आधुनिक काल की संगठित सेनाएँ भी उनके समक्ष अल्प प्रतीत होती हैं, क्योंकि इनमें असंख्य पदातियों के साथ-साथ घोड़े, रथ और हाथियों का भी समावेश था।

नीतिप्रकाशिका के अनुसार सेना का सर्वोच्च अधिकारी स्वयं राजा होता था, जो सम्पूर्ण सैन्य-व्यवस्था का नियंत्रक और संरक्षक माना जाता था। राजा के नीचे युवराज का स्थान निर्धारित था, जिसे न केवल उत्तराधिकारी, बल्कि शासन और युद्ध दोनों में प्रशिक्षित नेतृत्व के रूप में देखा जाता था। युवराज के लिए पाँच हजार 'वर्व' वेतन का उल्लेख मिलता है। यह वर्व प्राचीन सुवर्ण मुद्रा थी, जिसका आज के मूल्य में रूपान्तरण करना कठिन अवश्य है, किन्तु इससे उस पद की प्रतिष्ठा और उत्तरदायित्व का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इसके पश्चात् दण्डनायक या प्रधान सेनापति का स्थान आता था, जिसका मासिक वेतन चार हजार वर्व निर्धारित था। श्रतिरथ, महारथ, रथी, गजयोधी, अर्द्धरथ और एकरथ जैसे पदक्रमों के अनुसार वेतन में क्रमश: भिन्नता रखी गई थी, जिससे यह स्पष्ट होता है कि सैनिक-पद केवल साहस पर नहीं, बल्कि कौशल, अनुभव और उत्तरदायित्व पर आधारित था।

अश्वबलाध्यक्ष, पदात्यक्ष, पदातियों के नायक तथा अन्य अधीनस्थ अधिकारियों के लिए भी निश्चित निष्क या सुवर्ण वेतन निर्धारित था। यहाँ तक कि साधारण सैनिक के लिए भी पाँच सुवर्ण वेतन का उल्लेख मिलता है, जो यह दर्शाता है कि सैनिक को राज्य द्वारा सम्मानित और सुरक्षित जीवन प्रदान करने का प्रयास किया जाता था। अतिरथ, महारथ और एकरथ के भेद से यह स्पष्ट होता है कि रथयुद्ध में भी दक्षता के स्तर पर पदों का निर्धारण था। अर्द्धरथ की विशेषता यह थी कि दो अर्द्धरथी एक ही रथ पर बैठकर युद्ध करते थे, जो सामूहिक समन्वय और युद्ध-कौशल का प्रतीक था।

सेना में केवल योद्धा ही नहीं, अपितु सहायक कर्मियों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। हस्तिचालक, सारथी, पताकावाही, चक्राध्यक्ष, सन्देशवाहक, द्वारपाल, भाट, गायक, भाण्डागारिक तथा सैनिकों को वेतन प्रदान करने वाले अधिकारी तक के लिए निश्चित वेतन का विधान मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय सैन्य-व्यवस्था अत्यन्त संगठित, अनुशासित और प्रशासनिक दृष्टि से परिपक्व थी।

धनुर्वेद में वर्म और शस्त्रास्त्रों का विवेचन केवल भौतिक साधनों तक सीमित नहीं है, बल्कि उन्हें दैवी और पौराणिक पृष्ठभूमि से भी जोड़ा गया है। वर्म केवल मनुष्यों द्वारा ही नहीं, हाथियों और घोड़ों द्वारा भी धारण किए जाते थे, जिससे युद्ध में प्राण-रक्षा और शक्ति-संवर्धन होता था। शस्त्रास्त्रों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दक्ष प्रजापति की कन्याओं जया और सुप्रभा की कथा मिलती है। ब्रह्मा की आज्ञा और कृपा से जया को सामान्य शस्त्रास्त्रों की माता कहा गया, जबकि सुप्रभा के दस पुत्र संहार के प्रतीक बने, जो मन्त्र और दैवी शक्ति से संयुक्त होकर अत्यन्त दुर्धर्ष और अजेय माने गए। ब्रह्मा की विशेष अनुकम्पा से उत्पन्न ग्यारहवाँ पुत्र 'सर्वमोचन' कहलाया, जिसे सबको बन्धन से मुक्त करने वाला बताया गया।

धनुर्वेद का स्वरूप :

धनुर्वेद भारतीय ज्ञान-परम्परा में यजुर्वेद का उपवेद माना गया है और इसकी उत्पत्ति ब्रह्मा से पृथु तक मानी जाती है। यह केवल युद्ध-कला का ग्रन्थ नहीं, बल्कि एक दैवी सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित शास्त्र है। ग्रन्थों में धनुर्वेद को देवता का स्वरूप देकर वर्णित किया गया है, जिससे उसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक महत्ता प्रकट होती है। इसके बहुनेत्र, बहुभुज और विविध आयुध यह संकेत करते हैं कि युद्ध-कला में शक्ति, विवेक, नीति और दूरदर्शिता का समन्वय आवश्यक है। मंत्रयुक्त किरीट, वर्म और नीति का यज्ञ रूप यह दर्शाता है कि युद्ध केवल भौतिक संघर्ष नहीं, बल्कि धर्म और नीति से जुड़ी साधना भी है।

धनुर्वेद में शत्रुनाशक मंत्रों का भी विशेष स्थान है। मंत्र-जप के द्वारा शत्रु-निग्रह और विजय की प्राप्ति का विधान बताया गया है। मंत्र के ऋषि, छन्द, देवता और विनियोग का उल्लेख वैदिक परम्परा के अनुरूप है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि मंत्रों का प्रयोग विधि, नियम और उद्देश्य के साथ किया जाता था। इस प्रकार धनुर्वेद का स्वरूप शक्ति और आध्यात्मिक साधना का समन्वित रूप प्रस्तुत करता है, जहाँ युद्ध का लक्ष्य केवल विजय नहीं, बल्कि धर्म की रक्षा और न्याय की स्थापना है।

धनुर्वेद के चार पाद :

धनुर्वेद के चार पाद, अर्थात् चार प्रकार के अस्त्र, युद्ध-कौशल और सैन्यनीति के विभाजन को स्पष्ट करते हैं। पहला पाद, मुक्तास्त्र, जिनमें धनुष, बाण, भिण्डिपाल, शक्ति, तोमर, दुधाण, नलिका, लगुड, पाश, चक्र, दन्तकण्टक और भुशुण्डी आते हैं, सीधे-साधे शस्त्र हैं जिन्हें सामान्य युद्ध में प्रयोग किया जाता था। दूसरा पाद, अमुक्तास्त्र, अधिक विशेष और प्रभावशाली हैं, जिनमें वज्र, ईली, परशु, गोशीर्ष, असिधेनु, लवित्र, आस्तर, कुन्त, स्थूण, प्राश, पिनाक या त्रिशूल, गदा, मुद्गर, सीर, मुसल, पट्टिश, मौष्टिक, परिघ, मयूखी और शतघ्नी शामिल हैं। इन अस्त्रों का प्रयोग अधिक रणनीतिक और प्रबल हमलों के लिए होता था। इस प्रकार धनुर्वेद केवल शारीरिक युद्ध-कौशल ही नहीं, बल्कि अस्त्रों की विविधता और उनकी सामरिक उपयोगिता का भी ज्ञान देता है।

धनुर्वेद के तृतीय पाद में मुक्तामुक्त अस्त्रों का वर्णन मिलता है, जो ऐसे अस्त्र हैं जिन्हें आवश्यकता अनुसार फेंका भी जाता है और बिना फेंके भी प्रयोग किया जा सकता है। इन अस्त्रों के दो भेद बताए गए हैं—सोपसंहार और उपसंहार। सोपसंहार वे अस्त्र हैं जिनका उद्देश्य शत्रु द्वारा छोड़े गए अस्त्रों को रोकना, नियंत्रित करना अथवा वापस लेना होता है, जबकि उपसंहार वे हैं जो सीधे आक्रमण के लिए प्रयुक्त होते हैं। ग्रन्थों में सोपसंहार अस्त्रों की संख्या चवालीस और उपसंहार अस्त्रों की संख्या पचपन मानी गई है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय युद्ध-व्यवस्था में केवल आक्रमण ही नहीं, बल्कि रक्षा और प्रत्याक्रमण की भी अत्यन्त विकसित प्रणाली थी।

धनुर्वेद का चतुर्थ पाद मंत्रमुक्त अस्त्रों से सम्बद्ध है, जिनका प्रयोग मंत्रोच्चार के द्वारा किया जाता था। ये अस्त्र साधारण भौतिक शस्त्र नहीं माने जाते, बल्कि दैवी और आध्यात्मिक शक्ति से संयुक्त होते थे। इनमें विष्णुचक्र, वज्रास्त्र, कालपाशक, नारायणास्त्र और पाशुपतास्त्र प्रमुख हैं। इन्हें विभिन्न देवताओं से सम्बद्ध बताया गया

है—विष्णुचक्र विष्णु का, वज्रास्त्र इन्द्र का, कालपाशक ब्रह्मा से सम्बद्ध, नारायणास्त्र यम के पाश या जाल के रूप में तथा पाशुपतास्त्र पशुपति महादेव का अस्त्र माना गया है। इस प्रकार मंत्रमुक्त अस्त्र धनुर्वेद के उस पक्ष को प्रकट करते हैं जहाँ युद्ध केवल भौतिक शक्ति पर नहीं, बल्कि मंत्र, तप और दैवी अनुग्रह पर आधारित माना गया है।

धनुष और मुक्तास्त्र :

धनुर्वेद में धनुष और मुक्तास्त्र का विवरण केवल तकनीकी नहीं, बल्कि प्रतीकात्मक और दैवीक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। धनुषवाण की महिमा का वर्णन करते हुए इसे जीवित व्यक्तित्व के रूपक में दिखाया गया है। इसकी गर्दन चौड़ी, कमर पतली, पीठ दृढ़, चेहरा छोटा, चार हाथ ऊँचे और तीन स्थानों पर झुके हुए हैं। इसके मुंह में भयङ्कर दांत और लंबी जीभ है, तथा यह हमेशा गर्राटे करता रहता है। धनुष और वाण चलाने का तरीका भी सूक्ष्म रूप से बताया गया है—बायें हाथ से धनुष झुकाना, दाहिने हाथ से ज्या या डोरी पकड़ना, अंगूठे और अंगुलियों के बीच वाण रखना। धनुर्धर बायें हाथ में चमड़े का दस्ताना पहनता और पीठ पर तरकश बांधे रहता है।

मुक्तास्त्रों की विविधता भी विशेष है। इषु या वारण काले रंग का और तीन हाथ लंबा होता है, भिण्डिपाल टेढ़ा और घुमाकर शत्रु पर मारा जाता है। शक्ति दो हाथ लंबी, तिर्यक गति वाली, काली और रक्तरंजित होती है। द्रुघण लोहे का, तोमर लाल रंग का और नलिका काली तथा मर्मस्थानों को छेद देने वाली होती है। लगुड, पाश, चक्र, दन्तकण्टक और भुशुण्डी—ये सभी अस्त्र आकार, बनावट और प्रभाव में भिन्न हैं, किंतु युद्ध में अत्यंत प्रभावशाली माने जाते हैं।

इन 32 मुक्तास्त्रों की उत्पत्ति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी रोचक है। दधीचि ऋषि ने देवताओं को अपने अस्त्र और शरीर की हड्डियाँ प्रदान कीं, जिससे ये अस्त्र बने। जब देवता असुरों से हारकर भाग रहे थे, तो दधीचि की सहायता से वे अपने अस्त्र प्राप्त कर सके। दधीचि की 31 हड्डियों से 31 अस्त्र निकले और 32वीं हड्डी से इन्द्र का वज्र बना। इसके माध्यम से देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त की। इस कथा के कारण गाय का मूत्र और गोबर पवित्र माने जाते हैं, क्योंकि उन्होंने इस कार्य में योगदान दिया।

अमुक्तास्त्र :

अमुक्तास्त्रों का वर्णन धनुर्वेद में युद्धकला और अस्त्रशास्त्र की गहन जानकारी प्रदान करता है। ये अस्त्र मुक्तास्त्रों की तुलना में अधिक प्रबल, प्रभावशाली और

रणनीतिक रूप से उपयोगी माने गए हैं। इनमें वज्र, ईली, परशु, गोशीर्ष, सिधेनु, लवित्र, आस्तर, कुन्त, स्थूण, प्राश, पिनाक या त्रिशूल, गदा, मुद्गर, सीर, मुसल, पट्टिश, मौष्टिक, परिघ, मयूखी और शतघ्नी प्रमुख हैं।

वज्र का निर्माण वृत्रासुर के बधार्थ हुआ था; यह सूर्य के समान प्रकाशमान और प्रलयकाल की तरह भयंकर है। इसकी लंबाई 10 योजन, चौड़ाई 5 योजन और जीभ अत्यन्त तीक्ष्ण है। ईली छोटी तलवार जैसी, काली और बिना मूठ की है। परशु पतली, अर्द्धचन्द्राकार और चमकती हुई है। गोशीर्ष लोहे और लकड़ी से बनी, तीन शीर्ष वाली और 16 अंगुल ऊँची है। सिधेनु कटार है, काला, एक हाथ लंबी और किनारों पर तीक्ष्ण। लवित्र हँसुए की शकल की, पीछे चौड़ी और तेज, दोनों हाथों से फेंकी जाती है। आस्तर लंबा और लचीला, रथियों और पैदल सैनिकों के लिए उपयोगी है।

कुन्त लोहे का भाला, तीक्ष्ण सिरा और छह किनारे वाला है। स्थूण लाल रंग का और मनुष्य के समान ऊँचा, घुमाकर फेंका जाता है। प्राश लाल बांस का सात हाथ लंबा अस्त्र है। पिनाक या त्रिशूल तीन सिरों वाला, कांसे और लोहे का है, जिसमें रीछ के बालों की कलगी लगी रहती है। गदा लोहे की, चार हाथ लंबी और रथ के अक्ष के बराबर, भारी और भयङ्कर है। मुद्गर गोलाकार, मधुर रंग का और भारी होता है। सीर टेढ़ा, लोहे का और वार करने में प्रभावी है। मुसल दो सिरों से जुड़ा, शत्रु को कुचलने वाला है। पट्टिश कुल्हाड़े के समान, तेज धार वाला और हाथ की सुरक्षा के लिए उपयुक्त है। मौष्टिक अलंकृत, एक बित्ता लंबा और काले रंग का है। परिघ वर्तुलाकार, लकड़ी का और चोट पहुँचाने, मारने और वार करने के लिए उपयोगी है। मयूखी लकड़ी का ऊँचा अस्त्र है, जिसमें घंटियाँ लगी रहती हैं। शतघ्नी कांटों वाला, काला और गदा के समान फेंका जाता है।

खड्ग या असि अमुक्तास्त्रों में प्रमुख है। इसका निर्माण ब्रह्मा ने असुरों के प्रबल पराक्रमी होने के कारण किया। यह 50 अंगुल लंबा, 4 अंगुल चौड़ा और रुद्र के द्वारा संचालित होता है। खड्ग का प्रयोग 32 प्रकार से होता है और इसे बायीं ओर लटकाया जाता है। इसे असि, विशमन, खड्ग, तीक्ष्णधर्म, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्ममूल जैसे नामों से भी जाना जाता है। खड्ग की परंपरा दैवी, ऋषियों और मनु के वंश में सुरक्षित रही है, जो न्याय और दुष्टों के दण्ड के लिए प्रयोग की जाती है।

सोपसंहार और उपसंहार :

मुक्तामुक्तास्त्रों के तृतीय पाद में सोपसंहार और उपसंहार अस्त्रों का विशेष

महत्व है। सोपसंहार 44 अस्त्रों का समूह हैं, जिनका उद्देश्य शत्रु द्वारा छोड़े गए अस्त्रों को रोकना, नियंत्रित करना या उन्हें वापस लेना होता है। इनमें दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, ऐन्द्रचक्र, शूलवर, ब्रहाशीर्ष, मोदकी, शिखरी, धर्मपाश, वरुणपाश, पैनाकास्त्र, वायव्य, शुष्क, आर्द्र, शिखरात्र, क्रौञ्चास्त्र, हयशोर्प, विद्यास्त्र, अविद्यास्त्र, गन्धर्वा, नन्दनास्त्र, वर्षण, शोषण, प्रस्वापन, प्रशमन, सन्तापन, विलापन, मथन, मानवास्त्र, सामन, तामस, संवर्त्त, मौस, सत्य, सौर, मायास्त्र, त्वाष्ट्र, सोमास्त्र, संहार, मानस, नागास्त्र, गरुडास्त्र, शैला और इषीकास्त्र शामिल हैं।

उपसंहार 54 अस्त्रों का समूह हैं, जो सीधे शत्रु पर वार और विनाश के लिए प्रयुक्त होते हैं। इनमें सत्यवान्, सत्यकीर्ति, रभस, धृष्ट, प्रतिहार, श्रवाड्मुख, पराड्मुख, दृढनाभ, लक्ष्य, श्राविल, सुनाभक, दशाक्ष, शतवक्त्र, दशशीर्ष, शतोदर, धर्मनाभ, महानाभ, दुन्दुंनाभ, नाभक, ज्योतिष, विमल, नैराश्य, कर्षण, योगन्धर, सनिद्र, दैत्य, प्रमथन, सारचिरमाला, धृति, माली, वृत्तिम, रुचिर, पित्र्य, सुमनस, विधूत, मकर, करवीर, धनरति, धान्य, कामरूपक, जृम्भक, आवरण, मोह, कामरुचि, वारुण, सर्वदमन, सन्धान, सर्पनाथक, कंकालास्त्र, मौसलास्त्र, कापालास्त्र, कङ्कण और पैशाचास्त्र सम्मिलित हैं। इस प्रकार सोपसंहार और उपसंहार अस्त्र मुक्तामुक्तास्त्रों की रणनीतिक विविधता और युद्ध–कौशल की गहनता को दर्शाते हैं, जहाँ एक ओर रक्षा और नियंत्रण की कला है, वहीं दूसरी ओर आक्रमण और विनाश की शक्ति है।

मंत्रमुक्तास्त्र :

धनुर्वेद के चतुर्थ पाद में जिन अस्त्रों का वर्णन मिलता है, वे मंत्रमुक्त अस्त्र कहलाते हैं। इन अस्त्रों की संख्या बहुत अधिक नहीं है, केवल छः मानी गई है, किन्तु इनका महत्व अत्यन्त विशिष्ट और रहस्यमय है। ये साधारण अस्त्रों की भाँति केवल भौतिक बल से नहीं चलाए जाते, बल्कि मंत्रोच्चार द्वारा सक्रिय होते हैं। इनके प्रयोग में साधक की तपस्या, संयम, मंत्रज्ञान और दैवी अनुग्रह का विशेष स्थान माना गया है। इसी कारण इनका वास्तविक स्वरूप और कार्यविधि सामान्य ज्ञान से परे मानी गई है।

मंत्रमुक्त अस्त्रों में विष्णुचक्र, वज्रास्त्र, कालपाशक, नारायणास्त्र और पाशुपतास्त्र प्रमुख हैं। ये अस्त्र विभिन्न देवताओं से सम्बद्ध माने गए हैं और प्रत्येक का प्रयोग विशेष परिस्थिति तथा धर्मरक्षा के उद्देश्य से ही किया जाता था। मुक्तामुक्त और मंत्रमुक्त अस्त्रों के विषय में विस्तृत और स्पष्ट जानकारी प्राप्त करना कठिन माना गया है, क्योंकि इन्हें गूढ़, गोपनीय और केवल योग्य शिष्य को दिए जाने योग्य विद्या समझा गया।

इन सोपसंहार, उपसंहार तथा मंत्रमुक्त अस्त्रों का उल्लेख वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में भी मिलता है। बालकाण्ड के छब्बीसवें और तीसवें सर्ग में इन अस्त्रों का वर्णन संकेत रूप में किया गया है। इन्हीं अस्त्रों का ज्ञान महर्षि विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को प्रदान किया था, जिससे यह स्पष्ट होता है कि मंत्रमुक्त अस्त्र केवल युद्ध-विनाश के साधन नहीं थे, बल्कि धर्म की रक्षा और अधर्म के विनाश के लिए प्रयुक्त होने वाली दिव्य शक्ति के प्रतीक थे। इस प्रकार मंत्रमुक्त अस्त्र धनुर्वेद के उस उच्चतम स्तर को प्रकट करते हैं, जहाँ युद्धकला, मंत्रविद्या और आध्यात्मिक चेतना एक-दूसरे में विलीन हो जाती हैं।

तोप, बंदूक और गोली :

भारतीय ग्रंथों में तोप और बंदूक जैसे आग्नेयास्त्रों तथा बारूद (अग्निचूर्ण) का उल्लेख मिलता है, जो यह संकेत देता है कि प्राचीन भारत में आग्नेयास्त्रों की तकनीकी समझ और उनका प्रयोग संभव था। शुक्रनीतिसार में बृहन्नालिका (तोप) और लघुनालिका (बंदूक) तथा बारूद का वर्णन है, हालांकि इस ग्रंथ की प्राचीनता संदेहास्पद मानी जाती है। इसके बावजूद, कामन्दकीय नीतिसार में भी बन्दूक और गोलियों के उपयोग का उल्लेख है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ईसवी सन् के आरंभ में भारत में गोलियों और बारूद के प्रयोग की जानकारी थी। इसमें राजा के मदिरापान या प्रमत्त होने पर गुप्तदूतों द्वारा गोलियाँ दागकर उसे सावधान करने के उपाय बताए गए हैं।

वैशम्पायन की नीति प्रकाशिका इससे भी प्राचीन है और इसमें लोहे और सीसों के यंत्रों और गोलियों के फेंकने का स्पष्ट विवरण मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि भारत में प्राचीन काल से ही आग्नेयास्त्रों और बारूद का प्रयोग तथा उनके निर्माण की कला ज्ञात थी। राजलक्ष्मीनारायण हृदय में भी बारूद के योग का उल्लेख मिलता है, जो हिन्दुओं के प्राचीन तकनीकी ज्ञान को प्रमाणित करता है।

हालांकि सिकन्दर के समय के युद्धग्रंथों में आग्नेयास्त्रों के व्यापक प्रयोग का संकेत नहीं मिलता, डॉ. गस्टव प्रोपर्ट के अनुसार क्विंटस कर्टियस के लेखों से ज्ञात होता है कि सिकन्दर को भारत में आग्नेयास्त्रों का सामना करना पड़ा था। धर्मयुद्ध के नियमों के कारण इनका प्रयोग सीमित था, फिर भी रामायण और महाभारत में भी आग्नेयास्त्रों का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार, भारत में आग्नेयास्त्रों और बारूद का ज्ञान प्राचीन और सुव्यवस्थित था, जो केवल युद्ध के साधन के रूप में ही नहीं, बल्कि रणनीति और सुरक्षा के उपाय के रूप में भी विकसित था।

डॉ. गस्टव प्रोपर्ट का दृढ़ मत है कि तोप, बन्दूक और गोली-बारूद की

वास्तविक जन्मभूमि भारत ही है। उनका यह निष्कर्ष केवल ग्रन्थों पर आधारित नहीं है, बल्कि भारतीय शिल्पकला और स्थापत्य के प्रमाणों से भी पुष्ट होता है। वे मानते हैं कि प्राचीन काल से ही भारत में बारूद और आग्नेयास्त्र बनाने तथा प्रयोग करने का ज्ञान विद्यमान था। बारूद के निर्माण में जिन तीन पदार्थों—शोरा, गंधक और कोयला—का प्रयोग होता है, वे सभी भारत में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहे हैं। शोरा प्राकृतिक रूप से भारत में मिलता है और प्राचीन काल से ही यहाँ से विदेशों को निर्यात होता रहा है। औषधि के रूप में भी इसका प्रयोग होता था। गंधक विशेषत: सिंधु प्रदेश में प्रचुर मात्रा में पाया जाता था और वह भी औषधीय गुणों से युक्त माना गया है। कोयले के रूप में अर्क, आक, स्नुही और यहाँ तक कि लहसुन के कोयले का भी उल्लेख मिलता है, जिनका उपयोग बारूद और उत्तम इस्पात निर्माण में सहायक बताया गया है।

शुक्रनीतिसार में बारूद के निर्माण का अनुपात भी दिया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि यह ज्ञान केवल सैद्धान्तिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक था। भारत में उत्सवों और पर्वों पर आतिशबाजी और पटाखों की प्राचीन परम्परा भी इस बात का संकेत देती है कि बारूद का प्रयोग यहाँ बहुत पहले से जाना जाता था। डा0 गस्टव प्रोपर्ट ने मंदिरों की मूर्तियों और शिल्पों को भी प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है। मथुरा क्षेत्र, तिरुप्पल्लाणि, कुम्भकोणम्, कांची, तंजोर और पेरार जैसे स्थानों के मंदिरों में सैनिकों की ऐसी मूर्तियाँ मिलती हैं, जिनके हाथों में छोटी बन्दूकें या कड़ाबीनें दिखाई देती हैं। ये मूर्तियाँ यह सिद्ध करती हैं कि आग्नेयास्त्र भारतीय समाज और सैन्य व्यवस्था में प्रचलित थे।

इन स्थापत्य प्रमाणों के विपरीत यूरोप में बारूद का प्रवेश चौदहवीं शताब्दी ईस्वी से पहले नहीं माना जाता। इस तुलना से यह निष्कर्ष और भी बलवती होता है कि बारूद और आग्नेयास्त्रों का ज्ञान भारत में अत्यन्त प्राचीन था। इस प्रकार ग्रन्थीय साक्ष्य, भौगोलिक उपलब्धता और शिल्पकला—तीनों मिलकर भारत को बारूद की जन्मभूमि सिद्ध करते हैं।

☆☆☆